IJNRD.ORG ISSN : 2456-4184
INTERNATIONAL JOURNAL OF NOVEL RESEARCH AND DEVELOPMENT (IJNRD) | IJNRD.ORG
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

'चन्द्रगुप्त' नाटक के गीत

डॉ० किरण कुमारी

सहायक प्राध्यापक

विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, राँची

राँची विश्वविद्यालय, राँची

ईमेल : kirankumari6163@gmail.com

शोध सार–

भारतेन्दुजी के असमय अवसान से हिन्दी में मौलिक नाटकों के लेखन में अवरोध–सा आ गया था। भारतेन्दु युग में हिन्दी नाटकों की जो शैशवावस्था थी, उसे यौवन का मार्दव प्रदान करने में जयशंकर प्रसाद जी की प्रतिभा अग्रगण्य रही। प्रसाद जी इस क्षेत्र में युगान्तरकारी प्रतिभा के साथ अवतीर्ण हुए। अपनी प्रतिभा के बल से उन्होंने हिन्दी नाटकों को नवोत्कर्ष और प्रभविष्णुता प्रदान की। हिन्दी नाटक के क्षेत्र में उनका कार्य सर्वाधिक सराहनीय है। उन्होंने हिन्दी नाटकों को भारतीय संस्कृति, देशके गौरवशाली इतिहास, मानवीय संवेदनाओं से जिस ढंग से जोड़ा, उससे हिन्दी नाटकों को भव्यता और उत्कर्ष मिला। उन्होंने ऐतिहासिक और पौराणिक घटनाओं को अपने समय के साथ जोड़ा है, अपने समय की सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक चेतना का प्रतिबिम्ब इन रचनाओं में दिखलाया है।

बीज शब्द –नाटक, ऐतिहासिक, भारतीय संस्कृति, कथावस्तु,पात्र, गीत, काव्यमयता, दार्शनिकता,अभिनेयता, सौन्दर्य, प्रत्यक्ष आदि।

संस्कृत तथा प्राकृत नाटकों में गीतों का प्रयोग हुआ है। कालिदास के तीनों नाटकों में गीतों का विधान किया गया है। 'अभिज्ञान शाकुंतलम' के आरम्भ में ग्रीष्म ऋतु का गीतनटी गाती है।[1] 'हंसपदिका के गायन का संकेत है।'[2] 'मालविकाग्निमित्रम्' में मालविका छलिका का प्रयोग गीत के

माध्यम से करती है।'[3] 'विक्रमोर्वशीयम्' के चतुर्थ अंक में गेय पदों की प्रचुरता है।'[4] मध्ययुगीन मैथिली नाटक 'पारिजात हरण' में उमापति ने अनेक माधुर्यपूर्ण गीतों की योजना की है।[5]

हिन्दी नाट्य–साहित्य जयशंकर प्रसाद की प्रतिभा का प्रसाद पाकर निःसन्देह कृतार्थ हुआ है। प्रसाद जी मूलतः कवि थे, पर साथ ही एक सिद्ध नाटककार भी। हिन्दी नाट्य साहित्य में नायिका के चित्रण की ओर सर्वप्रथम प्रसाद जी ने ध्यान दिया। डॉ0 कृष्णदेव शर्मा लिखते हैं– प्रसादजी ने सर्वप्रथम नारी की बाह्य आकृति को बेधकर उसके अन्तर्मन में झाँकने का सफल प्रयास किया है। उनकी नायिकाओं में नारी की करूणा और वेदना मुखरित हो उठी है।''[6] अपने नायक, नायिकाओं के भावों की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने अपने नाटकों में गीतों को माध्यम बनाया है।

'चन्द्रगुप्त' नाटक उनके प्रौढ़काल की रचना है। प्रस्तुत नाटक में उनकी गीत–योजना मनोहारी है। प्रसाद जी की सधी लेखनी ने, उनके भावना–प्रवण कोमल कवि–मन की मनोज्ञ कल्पना से जीवन–सम्बल पा, 'चन्द्रगुप्त' नाटक में सुन्दर, सरस, भावमय गीतों की सृष्टि करके कला और कौशल की सीमा छू ली है। डॉ0 रामप्रसाद मिश्र लिखते हैं–''चन्द्रगुप्त नाटक के गीत बहुत अच्छे हैं। प्रसाद के किसी अन्य नाटक में ऐसे और इतने अच्छे गीत नहीं मिलते।''[7]

नाटक प्रसाद की लक्ष्य–यात्रा के भूमंडलीकृत ग्लोबल अध्याय हैं। उनके नाटक जीवन की घटनाओं का समुच्चय मात्र नहीं हैं बल्कि उनमें जीवन की सनातनता का दुर्धर्ष आप्त प्रवाह है। प्रसाद साहित्य कोश–2 के बीज प्रस्ताव में डॉ0 सुरेश गौतम लिखते हैं–''ये प्रसाद की नाट्यात्मक व्यंजनाएँ नहीं हैं, अपितु 'विश्व मैत्री की पहली सीढ़ी' और 'कर्म–अक्षर' हैं और चाणक्य, चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त, पतंजलि, देवसेना, ध्रुवस्वामिनी, गौतम बुद्ध, जयमाला जैसे पात्र हममें साँस लेने लगते हैं। 'सामरस्य','त्याग', 'करूणा','क्षमा', 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के इस चिरंतन भाव–बोध तथा अक्षर–मंत्रों में भारतीय संस्कृति और चिंतन दर्शन की यह नाट्यात्मक विश्व–यात्रा है।''[8]

नाटक रंगमंच पर पुनर्सृजन पाता है। इससे उसकी संप्रेषणीयता अधिक होती है। श्रव्य काव्य के तत्त्व भी इसमें समाहित होते हैं। साथ ही नाटक दृश्यकाव्य की शक्तियों और संभावनाओं से भी संयुक्त होता है।''काव्येषु नाटक रम्यं''[9] सूत्र में यही सत्य ध्वनित–प्रतिध्वनित है। प्रो० केसरी कुमार के शब्दों में–''प्रसाद पहले कवि हैं तब नाटककार। स्वभावतः यौवन की मादक तस्वीर आँकते समय, अतीत स्मृतियों की भाव–उर्मियाँ उठाते समय, सूक्ष्म दार्शनिकता का विस्फूर्जन करते समय, प्रसाद का कवि सजग हो उठता है और कल्पना–शृंग से कविता अर्थात् गीत का निर्झर फूट ही पड़ता है।'' वस्तुतः 'चन्द्रगुप्त' नाटक के गीतों का विधान करते समय प्रसाद जी ने नाटकीय गीतों की सारी विशिष्टताओं

का ध्यान रखा है। उनके गीत सामाजिकों का प्रभूत मनः प्रसादन करते हैं। साथ ही वे रसोद्रेक भी करते हैं और रस के आस्वाद में अभिवृद्धि भी। अनुकूल समय और स्थान पर आकर नाटकीय कथावस्तु के विकास में वे भरपूर योगदान करते हैं। नाटकीय वस्तु में वे इसप्रकार विन्यस्त हैं कि उन्हें किसी प्रकार नाटक से अलग नहीं किया जा सकता। उन्हें निकाल दें, नाटक निष्प्राण हो जायगा। नाटकीय दृश्यों की सरसता जाती रहेगी और अभिनय भी अर्थशून्य हो जाएगा। पात्रों के चरित्र निर्माण में भी उनका योगदान महत्त्वपूर्ण है। बाबू गुलाबराय लिखते हैं–''प्रसाद जी के नाटकों में मनोवैज्ञानिकता पर्याप्त मात्रा में है, और कहीं–कहीं बड़े सुन्दर अन्तर्द्वन्द्व दिखलाये गये हैं। उनके नाटकों में प्रसंगवश आये हुए गीत साहित्य की निधि है।''[10]

नाटक के ऐतिहासिक पर्यावरण–निर्माण में भी वे सक्रिय भाग लेते हैं। चाहे वीर रस के उच्छल उत्साह की व्यंजना हो अथवा श्रृंगार के ललित कलित मादन भाव की; करूण रस के वेदना–विगलित, करूणाप्यायित अविरलवाही शोक–भाव की अभिव्यक्ति हो अथवा शान्त के धीर, मन्द मन्थर निर्वेद भाव की, ये गीत ही इनकी आधारभूमि हैं, आश्रय हैं। इनके विघटन से नाटक की गरिमा का ही लोप हो जाएगा। गीतों को हटा दें, पात्रों के चरित्र की झाँकियाँ अधूरी रह जायेंगी, नाटककार का कथ्य अपूर्ण रह जायगा, इससे सिद्ध होता है कि प्रसाद के गीत उनके नाटक के अपरिहार्य अंग हैं।

प्रसाद के नाटकों पर प्रायः ये दोष लगाये जाते हैं कि उनकी भाषा क्लिष्ट है, शैली दुरूह है, उनमें काव्यमयता और यत्र तत्र दार्शनिकता है। परन्तु निभ्रान्त सच यह है कि तत्कालीन सांस्कृतिक वातावरण को उपस्थित करने के लिए ही प्रसाद को ऐसी शैली का आश्रय लेना पड़ा है। उनके नाटकों की अभिनेयता के बारे में शिवदान सिंह का मत ध्यातव्य है–''उनके अधिकतर नाटक अभिनेय हैं, किन्तु अभी इस श्रेष्ठ कला के राष्ट्रीय रंगमंच के अभाव में खेले नहीं जा सके, जिससे यह भ्रम पैदा हुआ है। रंगमंच की संभावनाओं का अभी हमारे देश में पूरी तरह विकास नहीं हुआ। अतः पहले से ही ऐसी धारणाएँ ठहरा देना अनुचित है।''[11]

'चन्द्रगुप्त' नाटक में कुल तेरह गीत हैं। पात्र–भेद से इन गीतों का विभाजन इसप्रकार है–सुवासिनी,अलका और मालविका में से प्रत्येक के तीन–तीनअर्थात् कुल नौ गीत हैं। एक गीत कल्याणी का है और एक गीत कार्नेलिया ने गाया है। एक गीत राक्षस ने गाया है और एक नेपथ्य गीत है। इस भाँति इन तेरह में से ग्यारह गीत स्त्रियों ने गाये हैं। गणपतिचन्द्र गुप्त का कथन है–''नारी–रूपको जैसी मह्यनता, सूक्ष्मता, शालीनता एवं गंभीरता कवि प्रसाद के हाथों प्राप्त हुई है उससे भी अधिक सक्रिय एवं तेजस्वी रूप उसे नाटककार प्रसाद ने प्रदान किया है।''[12] पात्र भेद से भी

प्रसाद का यह गीत–विभाजन ध्यातव्य है। इतना तो स्पष्ट है कि पुरूष–पात्रों की अपेक्षा प्रसाद के नारी–पात्रों में गान–प्रियता अधिक है, जो सहज भी है और स्वाभाविक भी। नृत्यशीला गायिकाएँ अथवा गान–कुशल नर्तकियाँ नाटक में आकर्षण–केन्द्र होती हैं, यह लोकानुभव है।

अंक भेद से गीतों का विभाजन इस प्रकार है–पहले अंक में दो, दूसरे में तीन, तीसरे में एक और चौथे अंक में सात गीतों का विधान है। विषय–भेद से इनमें दो गीत देशभक्ति के हैं और शेष ग्यारह श्रृंगार–विषयक हैं। श्रृंगार–गीतों में सौन्दर्य, यौवन और प्रेम का मांसल चित्रण है। प्रेम–निरूपण में रूप–सौन्दर्य का तीव्र आकर्षण, यौवन की उन्मद मनोदशा, अतीत की मीठी स्मृतियाँ, वियोग की दारूण व्यथा, प्रिय मिलन की आकुल उत्कंठा आदि का अनुपम निदर्शन है। राष्ट्रीयता के भाव से परिपूरित दोनों गीत हिन्दी गीतिकाव्य की परम उत्कृष्ट उपलब्धियाँ हैं। 'अरूण यह मधुमय देश हमारा'[13] तो अमर गीत है। इसे तो स्वतंत्र भारत का राष्ट्रगीत होना चाहिए था।

अंकानुक्रम से गीतों का भाव–सौष्ठव एवं स्थित्यौचित्य विश्लेषणीय है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक के प्रथम अंक के दूसरे दृश्य में दो गीत आए हैं–

एक, 'तुम कनक किरण के अन्तराल में।'[14]

दूसरा, 'निकल मत बाहर दुर्बल आह।'[15]

इनमें से पहले गीत को सुवासिनी ने गाया है और दूसरे को राक्षस ने। प्रथम अंक के पहले दृश्य में कथारम्भ के साथ ही आसन्न युद्ध की भीषण भूमिका कथा कूट दाव–घातों से भरे राजनीतिक वात्याचक्र, प्रबल झकोरों की दुर्ललित पीठिका पर प्रस्तुत ये दोनों गीत स्थित्यौचित्य के अनूठे नमूने हैं। ये दोनों ही प्रेम–गीत हैं। इनमें सामाजिकों के मनःप्रसादन की सहज क्षमता है। इस गीत–युग्म के प्रयोग से दो उद्देश्यों की एक साथ सिद्धि होती है। एक ओर तो नाटककार सामाजिकों को मगध सम्राट नन्द के विलासपूर्ण शासन की झाँकी दिखाता है और दूसरी ओर सुवासिनी और राक्षस के दृप्त प्रणय का प्रदर्शन करता है। सुवासिनी का गीत 'तुम कनक किरण के अन्तराल में' प्रसाद जी का एक उत्कृष्ट प्रेमगीत है। इसमें कवि ने यौवन के सूक्ष्म सौन्दर्य को मांसल बनाकर रूपायित कर दिया है। सूक्ष्म वायवीय मनोभावों, वायवीय शून्यता तथा अरूप वस्तुधर्म को रूपाकार प्रदान कर सबके सामने प्रत्यक्ष ला खड़ा करना कवि–कर्म–साधना की महती उपलब्धि है। प्रस्तुत गीत में प्रसाद जी ने अपनी यही सिद्धि पाई है। कांचन किरणों के अन्तराल में लुक छिपकर चलने में–वर्ण, कान्ति, गति–तनत्वक् की गोराई, लाली, आभा और सौन्दर्य की गत्यात्मकता सभी का एकत्र निरूपण है। सुन्दरी का गर्व से भरा होना, संकोच (ब्रीड़ा) से नत होना, चढ़ती जवानी के भरे वक्ष से घने रस ढरकाना (सम्मोहन), अधरों के कगारों में मीठी तरल हँसी पीते रहना (स्मिति एवं मादन भाव) – कुल मिलाकर एक सर्वांग सुन्दरी

तरूणी का पूर्ण चित्र सामने आ जाता है। गायिका सुवासिनी स्वयं कुसुमपुर की 'सुन्दरियों की रानी' है–सुकुमारता एवं कोमलता की प्रतिमूर्त्ति देवयानी की भूमिका में। गान भी यों नहीं है–पूरी भाव–भंगी, अंग–संचालन, भ्रू–नेत–निक्षेप, कुचउत्क्षेप, कटि–भंग, बाहु–उत्तोलन आदि अंगाभिनयों के साथ है। कादम्ब–कलस–पूरित उन्मुक्तहास–विलास के मदिर पर्यावरण मेंकोमलांगी कामिनी के सुकुमार हाव–भावों के सहारे प्रस्तुत यह गीत नाटकीय मंच पर अद्‌भुत रस–वृष्टि करेगा। प्रेक्षक मंडली के नयन–मन जुड़ा जायेंगे। सुवासिनी गाती है–

'हे लाज भरे सौन्दर्य, बता दो–

मौन बने रहते हो क्यों?'

यहाँ उपादान लक्षणा के द्वारा लाज–भरे सौन्दर्य का वर्णन आधार के स्थान पर आधेय कथित है। यहाँ सौन्दर्य सलज्ज है, मौन है। पर्याप्त संकेत है कि सुवासिनी वारांगना नहीं, कुलांगना है। गायन उसकी आजीविका तो है, पर चरित्र से वह पवित्र है। उसकी वाणी पर लज्जा की अर्गला है, अतः वह अपना प्रेम राक्षस के समक्ष व्यक्त नहीं कर पाती। यह अर्थ उसके प्रेमी राक्षस के लिए है और साथ ही उन्मादक आह्वान भी–

'बेला विभ्रम की बीत चली,

रजनी गंधा की कली खिली,

अब सांध्य मलय आकुलित

दुकूल कलित हो, यों छिपते हो क्यों?'

यह गीत जहाँ नाटकीय कथावस्तु की एक मुख्य कड़ी है, वहीं अभिनय के सौन्दर्य में चार चाँद लगाने में भी पूर्ण सक्षम है।

दूसरा गीत है–'निकल मत बाहर दुर्बल आह'। इसे राक्षस ने गाया है। यह गीत पहले गीत का पूरक है। सुवासिनी के गीत में 'सौन्दर्य' शब्द से राक्षस की ओर संकेत है तो राक्षस के गीत में 'आह' शब्द से सुवासिनी की ओर। सुवासिनी का आक्षेप था–''मौन बने रहते हो क्यों?' राक्षस का उत्तर है–'मौन ही अच्छा है।' मन में 'आह' (अर्थात् सुवासिनी) बसी है। प्रेमी का आग्रह है कि वह बाहर मत निकले। दुनिया की रीति बहुत बुरी है। लोग प्रेम का उपहास करते हैं। इस कारण मौन ही ठीक है। प्रेम का बिगोना ही अच्छा।

प्रथम अंक के दूसरे दृश्य के बाद इसके आगे के नौ दृश्यों में एकभी गीत नहीं है। एक दीर्घ अन्तराल का विधान कर प्रसाद जीने द्वितीय अंक में तीन गीत दिए हैं। नितान्त अपेक्षित जान पहले दृश्य का शुभारम्भ ही गीत–वलित रखा गया है। यह गीत है–

'अरूण यह मधुमय देश हमारा।'

जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।'[16]

इसे यवन–कन्या कार्नेलिया ने गाया है। इस गीत में भारत का एक नितान्त भव्य, परम गौरवमय चित्र अंकित है। डॉ0 नंद दुलारे वाजपेयी के शब्दों में–''पक्षियों का अनुकूल पवन के सहारे, छोटे–छोटे इन्द्रधनुष के–से पंख पसारे, अपनी ईप्सित दिशा में नीड़ों की ओर उड़ना और मेरा देश! (सुख, सौन्दर्य और अपनेपन की व्यंजना)। अनजान क्षितिज को कूल–किनारा मिलना–सहारा मिलना और मेरा देश! (आश्रय, दाक्षिण्य और औदार्य का भाव)।'' इतना ही नहीं, अरुण–लाल रंग (अनुराग, समृद्धि और भव्यता का वाचन); 'क्षितिज' को अवलंब देनेवाली भू–सीमा (अनंत विस्तार एवं व्यापकता का भाव) : नीचे सरस कमलों की आलोक रंजित छटा, ऊपर मनोहर तरू–शिखा–नर्तन और इधर जीवन की हरियाली पर मांगलिक कुंकुम चन्दन का छिड़काव (लोकमंगल, शान्ति और शीतलता से मंडित जनजीवन–चर्या में हर्षोल्लास का भाव–प्रकृति के अंचल में बिखरी निसर्ग सुषमा का अनंत भांडार) तथा खग–वृन्द का 'नीड़ निज प्यारा' समझना (निजत्व अर्थात् आत्मीयता के भाव के साथ पुष्कल प्रीति भाव की व्यंजना–वैसे प्राणियों के लिए भी जिनका कहीं ठिकाना न हो)–ये सभी भाव एक साथ गुँथे हैं। दशरथ ओझा लिखते हैं–''कार्नेलिया को भारतवर्ष की प्राकृतिक सुन्दरता तो प्रिय है ही, इससे अधिक प्रिय है वहाँ का अध्यात्मवाद। उसे इस देश का वैयक्तिक जीवन इतना करूणार्द्र और विश्वव्यापी प्रतीत होता है कि व्यष्टि और समष्टि में भेद दिखाई ही नहीं पड़ता।''[17] इस गम्भीर आशय को प्रसाद लाक्षणिक प्रयोग द्वारा इस प्रकार प्रकट करते हैं–''बरसाती आँखों के बादल–बनते जहाँ भरे करूणाजल, लहरें टकरातीं अनन्त की–पाकर जहाँ किनारा।'' 'सादृश्य सम्बन्ध से लक्षणा द्वारा बरसाती 'आँखों' का अर्थ हृदय का करूणार्द्र होना एवं 'अनन्त को किनारा' मिलने का भाव ससीम और असीम का मिलन स्पष्ट करना प्रसाद का अभीष्ट है।

इसके अतिरिक्त इस अंक में दो गीत और हैं। दोनों अलका द्वारा गाये गये हैं। दोनों ही प्रेम–गीत हैं। पहला गीत पर्वतेश्वर की कारा में और दूसरा पर्वतेश्वर के प्रासाद में गाया गया है। पहले में अलका के प्रेम–जीवन की पूर्व स्मृतियाँ हैं और दूसरे में उसके प्रेम–पूर्ण हृदय की आकुल पिपासा है। अलका सिंहरण की प्रणयिनी है, पर काल–चक्र उसे भीषण अवरोध में डाल देता है। वह अर्न्तद्वन्द्व में पड़ जाती है। इस गीत में उसके मन की इसी उलझनपूर्ण दशा का द्योतन है। पहला गीत स्वतः

प्रस्फुट है और दूसरा गीत रूपलोलुप पर्वतेश्वर की ध्यान–विच्युति के लिए परिस्थितिवश योजित है। दोनों ही स्थिति की माँग हैं। नाटक में यही इनका औचित्य है।

तृतीय अंक में केवल एक गीत है–''आज इस यौवन के माधवी कुंज में कोकिल बोल रहा।''[18] इस गीत को सुवासिनी गाती है। दूसरे अंक के सातवें दृश्य में आए गीत के बाद उस अंक के तीन दृश्य खाली गए हैं। फिर तृतीय अंक के चार दृश्यों में कोई गीत नहीं है। इसप्रकार पूरे सात दृ श्यों का अन्तराल है। इतने बड़े अन्तराल के बाद पाँचवें दृश्य में इस गीत का आना सर्वथा उचित है। स्थिति यह है कि यह गीत भी स्वेच्छया नहीं गाया गया है। मगध में नन्द की रंगशाला का दृश्य है। चिन्ता–संकुल नन्द सुवासिनी से गीत सुनाने का अनुरोध करता है। उस विलासी राजा के मनः प्रसादन के लिए श्रृंगारपरक कोई उन्मादकारी गान ही चाहिए था। स्थिति की इसी आवश्यकता की पूर्ति रूप की रानी सुवासिनी से कराई गई है। इस गीत में चढ़ती जवानीके उच्छल उन्माद तथा उच्छृंखल मन की उद्दाम वासना का अनूठा चित्रण है। आज तो 'लाज के बंधन' भी खुले जा रहे। जाने क्या कुछ बोल रहा यह कोकिल यौवन के माधवी कुंज में कि अपनी सुध–बुध ही खोई जा रही। और तो और, आज चाँदनी रात भी काँपते अधरों से 'बहकाने की बात' ही कह रही। मन के उन्माद के लिए सारे सामान तैयार हैं, सारी प्रविष्टियाँ पूरी हैं, केवल लुट जाना शेष है। नाटक की कथा में गीत की लड़ियाँ अनुस्यूत हैं। घटनाक्रम में झटके से मोड़ लाने तथा वस्तु–विकास में तीव्रता उत्पन्न करने में यह गीत पूर्ण सफल है। निश्चय ही सरल भाषा में प्रस्तुत यह गीत रंगमंच की शोभा का उत्कर्षक है।

इस प्रकार 'चन्द्रगुप्त' नाटक के तीन अंकों में प्रयुक्त गीतों की संख्या कुल छः है। यहाँ तक प्रसाद जी की गीत–योजना पूरी तरह सधी, सार्थक और सुन्दर है। हाँ चौथे अंक में आकर गीत–योजना सदोष हो गई है। अकेले इस अंक में सात गीत आए हैं। गीतों का यह संख्या–बाहुल्य रंगमंच के अभिनय की दृष्टि से दोष है। परन्तु थोड़ी गहराई और शुद्ध–बुद्धि से विचार करने पर इस दोष का परिहार हो जाता है। बात यह है कि इन गीतों में केवल दो गीत प्रमुख हैं और शेष पाँच गीत गौण और नगण्य हैं। दो प्रमुख गीतों में एक कल्याणी का गीत है–

''सुधा–सीकर से नहला दो।

रूप राशि इस व्यथित हृदय सागर को बहला दो।''[19]

इसगीत में चन्द्रगुप्त के प्रति कल्याणी के मधुर प्रणय की सुन्दर व्यंजना है। दूसरा प्रमुख गीत अलका गाती है–

''हिमाद्रि तुंग श्रृंग से।''[20] यह एक प्रयाण गीत है जिसमें राष्ट्रीयता तथा उच्छल उत्साह की भावना भरी है। साथ ही इसमें छन्द–योजना स्वर और लय पर ताल भरती चली है। कविता का समाज

से अविच्छेद्य सम्बन्ध है। यही कारण है कि छायावादी कविता में भारतीयों के भावों का पूरा–पूरा प्रतिनिधित्व है। पराधीनता के कारण जयशंकर प्रसाद सीधे–सीधे 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' नहीं कह सकते थे। परन्तु 'चंद्रगुप्त' नाटक में अलका द्वारा गाया हुआ जो प्रयाण गीत है वह वीर रस का प्रेरणादायक गीत है। यह भारत में बहुत प्रसिद्ध है। इसकी भाषा तत्सम शब्दों से भरी है पर निराला जिसे भावानुसारिणी भाषा कहते हैं उसे यहाँ परखा जा सकता है।

जयशंकर प्रसाद में विषय की व्यापकता, देशप्रेम और चिंतन की गहराई भी बहुत है। उनकी रचनाओं में गौरवशाली प्राचीन भारतीय संस्कृति का चित्रण बहुत प्रभावी ढंग से हुआ है। सूक्ष्मतम अनुभूतियों और मानवीय भावों की परख तथा उनकी अभिव्यंजना में प्रसाद बेजोड़ कवि हैं। दिनकर लिखते हैं–''अब जो नयी कविता आयी है, उसके परिप्रेक्ष्य में छायावाद जीवन से उतना दूर दिखाई नहीं देता, जितना दूर वह प्रगतिवादियों को दिखाई पड़ा था।''[21] 'चन्द्रगुप्त' नाटक के निम्नलिखित गीत को देखने पर उनके शब्द–चयन व पद–विन्यास की श्रेष्ठता दृष्टिगोचर होती है–

''हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है–बढ़े चलो, बढ़े चलो।''[22]

कवि का आशय है कि जो शूर वीर देश की रक्षा के लिए और अपनी मातृभूमि के सम्मान के लिए शहीद हो जाते हैं, अपना बलिदान कर देते हैं उनकी यश गाथा युगों युगों तक लोगों द्वारा स्मरण की जाती है। डॉ0 रामप्रसाद मिश्र लिखते हैं–''हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती' एक महान प्रयाण गीत है। इसे हिन्दी साहित्य का श्रेष्ठतम प्रयाण–गीत कहा जा सकता है। इसकी प्रशस्य देशभक्ति और अप्रतिहत गति रवीन्द्र के 'जन–गन–मन' से अल्प मूल्यवान नहीं है। इस गीत में राष्ट्र की एकता को प्रशस्य अभिव्यक्ति प्रदान की गई है।''[23] इस गीत में भावों के अनुकूल ही शब्दों का चयन किया गया है। गीत का एक–एक शब्द मानो वीरों में जोश भरने में समर्थ प्रतीत होता है। डॉ0 दशरथ ओझा का मंतव्य है–''प्रसाद साहित्य के दो सामूहिक गीत हिन्दी साहित्य की अमरनिधि बन गये हैं। प्रथम गान तो 'वन्दे मातरम्' गायन के समान ही राष्ट्रीय जीवन प्रदायक बन गया है। इस गीत में संयुक्ताक्षरों, अनुस्वारों, ढ, ण, ज, ज्ञ आदि व्यंजनों के कारण प्रयाण गीत का सौष्ठव चमक उठा है। इसका छन्द भी शब्दों की ध्वनि के अनुरूप है। उनका यह गीत ''स्वर और लय पर नृत्य करता है और छन्द वीर भावों के साथ अकड़कर चलता है।'' इसमें जातीय गर्व और शालीनता है, ओज और कोमलता है। प्रसाद के

राष्ट्रीय गीत के समीप संकीर्णता फटकने नहीं पाती।''[24] इन शब्दों के पर्याय द्वारा न तो भावाभिव्यक्ति ही संभव है और न लयात्मकता ही सुरक्षित रह सकती है। प्रसाद के गीतों के शब्द–विधान के विषय में डॉ0 रामकुमार वर्मा का कथन भी अक्षरशः सत्य प्रतीत होता है–''शब्द विधान, कौशल, लय–माधुर्य आदि से गीत सुदृढ़, स्निग्ध एवं चमकीले तारों से बुने सिल्क सा उतरता है। प्रसाद के गीतों में अनुभूति की अन्विति ही गीत के सब तत्त्वों को दृढ़ता से गूँथे रखती है। ''शब्द–शिल्प'' और 'फिनिश' में तो शायद उनकी टक्कर का कोई कवि हिन्दी में हुआ ही नहीं है।''[25] शब्द चयन के अन्तर्गत प्रसादजी ने अपने नाटक के गीतों में तत्सम तद्भव और देशज तीनों प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है।

निष्कर्ष –

प्रसाद के नाटकों में काव्य तत्त्व और नाटक तत्त्व आकर एक ऐसे स्वरूप विधान का सृजन करते हैं, जिसमें काव्यमयता के कारण मानव जीवन के रागतत्त्व निखर कर सामने आते हैं, भावनाएँ अपनी वेगवती धारा में पाठकों और दर्शकों को बहा ले जाती हैं। 'चन्द्रगुप्त' नाटक के गीतों में मनुष्य का अन्तर्जीवन और बहिर्जीवन एक ही साथ चित्रित हुआ है। साथ ही आवेगों की तीव्रता के कारण छन्दोबद्ध, लयपूर्ण और अलंकृत शैली का प्रयोग किया गया है। गीतों में पात्रों की सहज भावाभिव्यक्ति हुई है। इस नाटक के छोटे–छोटे गीतों में तो कलात्मक प्रस्तुति दर्शनीय है। कुछ लम्बे और राष्ट्रीय गीत भी इस दृष्टि से श्रेष्ठ हैं। उनमें बिखराव नहीं मिलता है। गीतों में उपयुक्त शब्द–विधान के कारण लयात्मक मनोरमता की सृष्टि हुई है। कहीं से भी एक शब्द हटाकर या उसके पर्यायवाची शब्द को रखकर देखें तो गीत में विकृति आ जाएगी। शब्द चयन की दृष्टि से इस नाटक के गीत बेजोड़ हैं। साथ ही आकर्षक पद–विन्यास भावों को प्रेषणीय बनाने में सक्षम हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण नाटक पर समग्र दृष्टि डालने से इतना स्पष्ट है कि शैली और भाव की दृष्टि से 'चन्द्रगुप्त' नाटक के गीत सर्वांग सुन्दर हैं।

संदर्भ सूची –

1. 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्', 1/3, 1/4.
2. वही, 4/1.
3. 'मालविकाग्निमित्रम्', 2/4.
4. 'विक्रमोर्वशीयम्', 2/4.
5. उमापति–'परिजात हरण', सम्पादक, जार्ज ग्रियर्सन, पृ0–1, गीत सं0–1, 4, 5, 7, 8, 11, 12, 13.
6. शर्मा डॉ0 कृष्णदेव, अनुपम साहित्यिक निबन्ध, रीगल बुक डिपो, दिल्ली–6, प्रथम संस्करण, 1974, पृ0सं0–478.

7. मिश्र डॉ0 रामप्रसाद, प्रसाद : आलोचनात्मक सर्वेक्षण, पल्लव प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1979, पृ0सं0–161.
8. गौतम डॉ0 सुरेश, गौतम डॉ0 वीणा, प्रसाद साहित्य–कोश–3, दिव्यम् प्रकाशन दिल्ली–9, प्रथम संस्करण, 2012, पृ0सं0–15–16.
9. सिंह डॉ0 विजयपाल, संस्कृत साहित्य का इतिहास, राजपाल, दिल्ली, संस्करण, 1997, पृ0सं0–130.
10. गुलाबराय बाबू, हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, संस्करण, 2008, पृ0सं0–132.
11. द्रष्टव्य, शर्मा डॉ0 शिवकुमार, हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, अशोक प्रकाशन दिल्ली, बारहवाँ संस्करण, 1990, पृ0सं0–562.
12. गुप्त गणपति चन्द्र, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, आठवाँ संस्करण, 2002, पृ0सं0–381.
13. गौतम डॉ0 सुरेश, गौतम डॉ0 वीणा, प्रसादसाहित्य–कोश–3, दिव्यम् प्रकाशन, दिल्ली–9, प्रथम संस्करण, 2012,पृ0सं0–88.
14. वही, पृ0सं0–357.
15. वही, पृ0सं0–358.
16. वही, पृ0सं0–388.
17. ओझा डॉ0 दशरथ, हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, राजपाल, दिल्ली, संस्करण, 2014, पृ0सं0–243.
18. गौतम डॉ0 सुरेश, गौतम डॉ0 वीणा, प्रसाद साहित्य–कोश–3, दिव्यम् प्रकाशन, दिल्ली–9, प्रथम संस्करण, 2012, पृ0सं0–433.
19. वही, पृ0सं0–451.
20. वही, पृ0सं0–467.
21. दिनकर रामधारी सिंह, शुद्ध कविता की खोज, उदयाचल, पटना, प्रथम संस्करण, 1966, पृ0सं0–36.
22. गौतम डॉ0 सुरेश, गौतम डॉ0 वीणा, प्रसादसाहित्य–कोश–3, दिव्यम् प्रकाशन, दिल्ली–9, प्रथम संस्करण, 2012,पृ0सं0–88.
23. मिश्र डॉ0 रामप्रसाद, प्रसाद : आलोचनात्मक सर्वेक्षण, पल्लव प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1979, पृ0सं0–161.
24. ओझा डॉ0 दशरथ, हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, राजपाल, दिल्ली, संस्करण, 2014, पृ0सं0–245.
25. वर्मा डॉ0 रामकुमार, जयशंकर प्रसाद : चिन्तन और कला, पृ0सं0–120.